शोध मंथन Vol. XI No.II Apr.-June. 2020 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 7.760 (SJIF)

नैतिक पर्यावरण– पाश्चात्य एवं भारतीय विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 निरंजना शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
प0 एल0 एम0 शर्मा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऋषिकेष, देहरादून
Email: drniranjanasharma@gmail.com

सारांश

*मानव एवं पर्यावरण के बीच अनंतकाल से एक अपरिहार्य सम्बन्ध रहा है। मानव की स्वार्थपरक प्रवृत्ति ने उसे प्रकृति की विविधताओं को अनाधिकृत रूप से उपयोग ही नहीं बल्कि असीमित दुरूपयोग के लिये भी उत्प्रेरित किया, परिणाम स्वरूप पर्यावरण की समस्या गम्भीर हो गई। वैज्ञानिकों ने प्रदूषण को मुख्य समस्या समस्या मानकर विविध घटकों के माध्यम से उपचार करने का प्रस्ताव रखा किंतु समस्या गम्भीर होती गई। अतः अनुभव किया जाने लगा कि पर्यावरण परक समस्याओं के मूल मे कहीं न कहीं मानव की अनियन्त्रित तथा असंतुलित जीवन पद्धती है, जिसका समाधान मानव व्यवहार के नियमन, परिशोधन एवं सशाधन में ही उपलब्ध होगा। मानवीय प्रवृत्ति एवं व्यवहार के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तथा एतद् सम्बन्धी नैतिक नियमन हेतु सार्थक निर्देश भारतीय दर्शन की हर शाखा मे देखने को मिलते है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय दर्शन में उपलब्ध निर्देशों को वर्तमान युग की पर्यावरणपरक समस्याओं के समाधान हेतु कैसे रेखांकित एवं उपयोग में लाया जाय, इसी उद्देश्य से इस शोध पत्र को प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि भारतीय दर्शन की आस्तिक और नास्तिक शाखाओं में मानवीय प्रवृत्ति एवं व्यवहार के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तथा एतद् सम्बन्धी नैतिक नियमन हेतु सार्थक निर्देश रेखांकित करना वर्तमान भौतिक एवं उपभोक्तावादी सामाजिक वातावरण में सम्भवतः असम्भव नहीं तो किन्तु कठिन अवश्य है। किन्तु भारतीय जीवन दर्शन सह–अस्तित्व तथा सबके कल्याण में निहित है। जिसमें सर्वे **भवन्तु सुखिन सर्वे भवन्तु निरामया** की मंगल कामना की गयी है। धर्म, कर्म, काम व मोक्ष ही भारतीय जीवन शैली का आधार है जो उसकी संस्कृति, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक स्वरूप का निर्धारण करता है।*

मुख्य शब्दः *भारतीय दर्शन, आध्यात्मिक नौतिक तत्वमीमांशीय तथा तर्कशक्ति समृद्ध परम्परा, मानवीय व्यवहार, उच्चतम आदर्श, नैतिक पर्यावरण, पाश्चात्य पर्यावरण दर्शन।*

प्रस्तावना

वर्तमान काल में दर्शन के गंभीर आध्यात्मिक एवं नैतिक प्रतिस्थापनाओं समसामयिक व्यवहारिक समस्याओं के समाधान हेतु उचित परिप्रेक्ष्य में व्याख्यादित किये जाने की एक गंभीर चुनौती है। एक ओर साधारण जनमानस में दर्शन के गंभीर आध्यात्मिक एवं नैतिक चिंतन को मात्र उपदेशात्मक तर्क के रूप में स्वीकार करने की प्रवृति के विकास से इसके प्रति एक अनीक्षित उदासीनता बढ़ रही है, दूसरी ओर अत्यन्त सामाजिक समस्याओं का समाधान बिना किसी गंभीर चिंतन के बिना किसी दार्शनिक आधार के सतही तौर पर करने का प्रयास समस्या को सुलझाने के बजाय और विकृत करता जा रहा है। भारतीय जीवन में एक संतुलित जीवन पद्धति के लिए समुचित निर्देश हैं, आगत–अनागत समस्याओं का यथोचित समाधान है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय दर्शन के मूल चिंतन परम्परा में पर्यावरणपरक समस्याओं का समाधान खोजने का उद्देश्य रखा गया है। भारतीय दर्शन के समृद्ध परम्परा पर अध्यात्मिक, नैतिक, तत्वमीमांसीय, तर्कशास्त्रीय आदि कई दृष्टिकोणों से अध्ययन किया गया है। पर्यावरण सम्बन्धी ज्वलन्त समस्या के समाधान एवं संतुलित पर्यावरण बनाये रखने के लिए निर्देश बहुलता से उपलब्ध है। पर्यावरण समस्या की गंभीरता एवं भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों में नीति निर्देशक तत्व की उपलब्धि यह विषय चयन करने के पीछे की मुख्य प्रेरणा स्रोत विगत दशकों में पर्यावरणारक समस्या के संकट से मुक्ति पाने के लिए जीवन जन्तु संरक्षण वन–नीति वन्य जीव संरक्षण, वृक्षारोपण इत्यादि कार्यक्रम चल रहे हैं। यदि हम मानव व्यवहार में पर्यावरणपरक समस्याओं का मूल संरक्षण खोजना चाहें तो कुछ प्रश्न इस प्रकार किये जा सकते हैं, जैसे मानव व मानव के बीच सम्बन्ध कैसे हों, मानव और प्रकृति के बीच सम्बन्ध कैसे हों, मानव प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग कर रहा है या दुरूपयोग कहीं मानव अपनी बौद्धिक क्षमता का अपने भौतिक लोभ के लिए दुरूपयोग तो नहीं कर रहा, इत्यादि। मानवीय व्यवहार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं उच्चतम आदर्श की प्राप्ति के लिये मानव–मानव एवं मानव तथा प्राकृतिक सत्तओं के बीच में सन्तुलन बनाने हेतु अनेकशः नीति–निर्देशक तत्व भारतीय दर्शन के ग्रन्थों में उपलब्ध है। पर्यावरण शब्द पौर्वत्य अथवा पाश्चात्य दोनों ही भाषाओं में मात्र चतुर्दिक आवरण से सम्पादित है। संस्कृति भाषा का शब्द परि + आवरण यदि चतुर्दिक परिच्छिन्न आवरण है तो पाश्चात्य चिंतन में मूल फ्रेंच शब्द (Envioroment) का अर्थ है। (environed nous) जिसे हम अपने चारों ओर देख पाते हैं वही (Environment) है। इस प्रकार पर्यावरण उन समस्त दशाओं का समुच्चय है जिनसे मानव जीवन प्रभावित होता हैं मानव अपने चारों ओर विद्यमान सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं जैविक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिये प्राकृतिक अवस्थाएं जैसे वायु, जल, प्रकाश, खनिज पदार्थ एवं वनस्पति आदि मानव को प्रभावित करते है। इसी प्रकार सामाजिक संरचना, सामाजिक नियम एवं सांसकृतिक विरासत में प्राप्त प्रतिमान जैसे धर्म, नीति, परम्परा, मूल्य, लोकाचार, मनोवृति एवं वैज्ञानिक अवष्किार आदि भी मानव जीवन को प्रभावित करती है। मानव पर्यावरण को प्रभावित भी करता है। मानव बौद्धिक प्राणी है और यह परम्परा, धर्म, संस्कषति एवं ज्ञान–विज्ञान के स्वरूप को स्वयं आकार एवं दिशा देता है। जिससे पर्यावरण प्रभावित होता है।

इस प्रकार समग्र भौतिक–अभौतिक परिदृश्य अर्थात समग्र पर्यावरण को मानवीय चिंतन एवं व्यवहार के रूप में समझा जा सकता है।

पर्यावरण शब्द एक वृहत आशय के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें भौतिक एवं प्राकृतिक पर्यावरण के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक पर्यावरण भी समाहित होता है। हमने यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि ''पर्यावरण'' शब्द का प्रयोग चाहे जिस अर्थ मे किया जाय, एतद् सम्बन्धी संकट की जड़ें मानव–चेतना के ह्रास का परिचारक हैं। मानव के इसी नैतिक चेतना के उद्बोधन का दायित्व नीतिशास्त्र एवं नीतिशास्त्रियों के ऊपर है। नीतिशास्त्र के दायित्व का निर्वहन उचित–अनुचित, शुभ–अशुभ तथा श्रेय–प्रेय के विवेचन एवं इनके मापदण्ड से करता है। नीतिशास्त्र नैतिक परिप्रेक्ष्य में युगप्रदत्त समस्याओं का नैतिक दृष्टिकोण से समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। मानवीय अस्तित्व के लिए हमने मानवीय व्यवहार के परिमार्जन एवं परिशोधन से पर्यावरण संवर्द्धन एवं संरक्षण का सुझाव दिया है। समस्या चाहे मानव व्यवहार की हो या पर्यावरण –प्रदूषण एवं पर्यावरण क्षरण, इनका समाधान मानव के द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सकता है। सरल शब्दों मे मानव–व्यवहार को निर्देशित करने के माध्यम से पर्यावरणपरक चिंतन एवं क्रिय का व्यवहार ही 'नैतिक पर्यावरण' का सृजन कर सकता है। यहां नैतिक पर्यावरण सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य मतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना मेरा मुख्य उद्देश्य है। किसी भी दर्शन परम्परा में नैतिक–चिंतन उस दर्शन को तत्वमीमांसीय एवं ज्ञानमीमांसीय प्रतिस्थापनाओं से अपरिहार्य रूप से सम्बद्ध एवं प्रभावित रहा है। सम्पूर्ण भारतीय दर्शन (चार्वाक को छोड़कर) में तत्वमीमांसीय एवं ज्ञानमीमांसीय प्रतिस्थापनायें एक उच्चतर आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर उन्मुख हैं। उनका मानव–उत्थान एवं मानव कल्यांण का उद्देश्य भी पूर्णतः मानव केन्द्रित नहीं था, अपितु भारतीय मनीषियों ने मानव को सम्पूर्ण सृष्टि का महत्वपूर्ण अंग मानते हुए सृष्टि के सर्वागीण संवर्द्धन एवं संरक्षण के माध्यम से मानव कल्यांण के नीति–निर्देशक तत्वों का विवेचन किया है। पाश्चात्य दर्शन परम्परा में भी यदा–कदा मानव को सम्पूर्ण सृष्टि का एक महत्वपूर्ण अंग तो स्वीकार किया गया परन्तु वे मानव कल्याण के नीति–निर्देशन की प्रक्रिया में पूरी तरह से मानव केन्द्रित हो गये एवं वे गणित, विज्ञान एवं ज्यामिति को आधार बनाते हुए ऐसे ज्ञान एवं तत्वमीमांसीय विवेचन की ओर अग्रसर हुए, जो मूलतः मानव केन्द्रित होता गया। उपरोक्त अवधारणा इस तथ्य से पुष्ट होती है कि पर्यावरण नीतियों के विवेचनगत भारतीय दर्शन परम्परा में 'मानव–केन्द्रित' नीति–दर्शन एवं पर्यावरण परिस्थितिकी केन्द्रित नीतिशास्त्र का विवाद कभी भी हावी नहीं रहा, जबकि पाश्चात्य दर्शन परम्परा में 1960 के पश्चात ही 'मानव केन्द्रित' जगत–विचार को पर्यावरण हित में न मानकर परिस्थितिकी केन्द्रित जगत विचार के विवेचन की बात की गई एवं पर्यावरणपरक नीतिशास्त्र में इस विचार को पूर्व मान्यता के रूप में स्वीकार किया गया। पाश्चात्य दर्शन परम्परा में नैतिक चिंतन स्वतंत्र एवं व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, परन्तु उस पर अपरिहार्य रूप से मानव केन्द्रित जगत–विचार तथा मानव–कल्याण केन्द्रित यांत्रिक ज्ञानमीमांसीय सिद्धन्तों का प्रभाव परिलक्षित होता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो चाहे वह प्लेटो का उच्च्तम शुभ या अरस्तू द्वारा विवेचित पशु और ईश्वर

के बीच का मानव हो, दोनों पर्यावरण के मूल तत्वों का विवेचन तो करते हैं परन्तु कहीं इन्हें मानव के समान मानकर, इनके आन्तरिक मूल्य को स्वीकार करके इनके संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु नीति–निर्देशक तत्वों का विवेचन नहीं किया गया है। अपितु जो भी नैतिक चिंतन प्रस्तुत किये गये वे सभ्य राजतंत्र एवं मानव समाज को दृष्टिकोण में रखकर ही प्रस्तुत किये गये है।

प्लेटों ने प्रायः यह कहा है कि नैतिक क्रिया का लक्ष्य प्रसन्नता या उल्लास है। प्लेटो के अनुसार ''प्रसन्नता का सुख से कोई सम्बन्ध नहीं है''। यदि किसी ऐसे व्यक्ति की कल्पना की जाये जो पूर्ण रूप से न्यायी और ईमानदार हो तो वह पूर्ण रूप से प्रसन्न भी होगा भले ही उसका जीवन प्रत्येक विपत्ति से अभीभूत हो और सुख के लिए उसके जीवन में तनिक भी स्थान न हो। ठीक इसी प्रकार अरस्तु मानव को उसकी विशेष बौद्धिक क्षमता के कारण उसे पशु से श्रेष्ठ तथा ईश्वर से निम्न प्राणी बताता है। संवेद्यता, प्रत्यक्षण एवं स्मृति के कारण मानव पशु से मिलता है तो बौद्धिकता में ईश्वर से इसकी समानता है। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के जनक कहे जाने वाले **रेने देकार्त** के अनुसार बाहय जगत की सभी प्रक्रियाएं यांत्रिक हैं। यहॉ तक कि उनके विचार से पशु–पक्षियों के व्यापार भी चेतना–शून्य होने के कारण यांत्रिक रूप से संचालित होते हैं देकार्त के दर्शन में 'मन' प्रत्यय की श्रेष्ठता अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक सत्ताओं एवं परिणामतः सम्पूर्ण प्राकषतिक जगत सहित पर्यावरण को मानव से पृथक करके दोयम दर्जा देता है । **स्पिनोजा** का 'ईश्वर–प्रकृतिवाद' या 'प्रकृति–ईश्वरवाद' तथा लाइबनित्ज के चिद्गुणों में विकास का क्रम कुछ हद तक पर्यावरण एवं प्रकृति के घटकों को मानव के समानान्तर रखता तो है परन्तु ज्यामिति और गणित के आधार पर विकसित ज्ञान मीमांसीय एवं तत्वमीमांसीय अवधारणायें उन्हें स्वतन्त्रता एवं नियतिवाद के जाल मे उलझा देती है। अनुभववादी जॉन लॉक, बर्कले एवं डेविड ह्यूम के अनुभववाद के आधार में देकार्त का यांत्रिक द्वैतवाद मान्य रहा, इसलिए वे अनुभव, भाव–संवेग एवं अर्न्तदृष्टि को ज्ञान का महत्वपूर्ण स्रोत मानने के बाद भी इसे पर्यावरण के घटकों से जोड़कर पर्यावरण संरक्षण–संवर्द्धन एवं पारिस्थितिकीय संतुलन बनाने के लिए उपयोग मे ला सके। इस प्रकार आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में देकार्त से ह्यूम के दर्शन में प्रकृति, विश्व, मानव, आत्मा, ईश्वर, सृष्टि, रचना आदि से सम्बद्ध दार्शनिक प्रश्नों पर चिन्तन तो निश्चित रूप से किया गया है, बौद्धिकता एवं यांत्रिकता प्रधान होने के कारण, भाव–संवेग एवं अर्न्तदृष्टि के आधार, आस्था का आयाम विकसित न कर पाने के कारण पर्यावरणपरक नैतिक चिंतन का संकेत तक नही दे पाये। उनका नैतिक चिंतन मात्र इस पर निर्भर रहा कि एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति या समाज के अन्य व्यक्तियों को कितना और कैसे प्रभावित करता है। पर्यावरण एवं प्रकृति के आन्तरिक मूल्य स्वीकार न करने के कारण ही भावना, संवेग एवं आस्था के आयाम से जोड़ नहीं सका। शुद्ध बौद्धिक एवं शुद्ध अनुभाविक तर्को की परिणति कभी भी समग्रात्मक निष्कर्ष की ओर नहीं ले जाते हैं, अतः पाश्चात्य दर्शन चिंतन में विशेषतः ह्यूम तक, नैतिक पर्यावरण के आयाम भी खंडित एवं अपूर्ण निष्कर्ष की ओर ले जाते हैं। यद्यपि पाश्चात्य नीतिशास्त्र में मानव के लिये निर्देशित नैतिक चिंतन, आचार नियम, परोपकार, दया, दान आदि का निर्देश मिलता है परन्तु वह भी मिल और बेन्थम के अनुसार मानव अपने समंजस्य एवं कल्याण के लिये ही करता

है। जैसे कि मिल का कहना है – ''केवल सुख ही साध्य के रूप में वांछनीय है। अन्य सभी वस्तुएं उसके साधन के रूप में ही वांछनीय हैं''। पाश्चात्य–दर्शन परम्परा में इमैन्युअल काण्ट एक समीक्षावादी चिंतक के रूप में प्रतिस्थापित हुआ । काण्ट ज्ञानमीमांसीय परिप्रेक्ष्य में अनुभवाद एवं बुद्धिवाद तत्वमीमांसीय परिप्रेक्ष्य में भौतिक एवं विज्ञानवाद तथा नीतिमीमांसीय परिप्रेक्ष्य में भोगवाद एवं संन्यासवाद की समीक्षा करता है। संभवतः इसीलिए काण्ट के नैतिक चिंतन में कर्तव्य की धारणा का प्रथम बार स्पष्ट चिंतन मिलता है। नैतिक बुद्धि ही मनुष्य को उसके निरपेक्ष एवं एकान्तिक कर्तव्य का ज्ञान देती है। उसके नियम अनुभव निरपेक्ष हैं। उसका आदेश परम आदेश है। ये परम आदेश मूल रूप से पांच बताये गये हैं। जिनमें पहला – कर्तव्य के लिये कर्तव्य पहला सिद्धान्त है, दूसरा है– तुम उस सिद्धान्त के अनुसार कर्म करो जिसके बारे में तुम यह इच्छा कर सको कि वह एक सार्वभौम नियम बन सके। तीसरा–तुम दूसरों के लिए वैसा ही करो जैसा कि तुम दूसरों से अपने प्रति किये जाने की अपेक्षा रखते हो। चौथा–समस्त मानवता को साध्य समझो, किसी व्यक्ति को साधन नहीं। पांचवा और अन्तिम है–''इस प्रकार कार्य करो कि तुम पूर्णता से सार्वजनिक राज्य में अपने सिद्धान्तों द्वारा नियमों के विधायक बन सको''।

दार्शनिक विवेचना में, नैतिक पर्यावरण में 'नैतिक' का सम्बन्ध नैतिक सिद्धन्तों तथा पर्यावरण का सम्बन्ध चतुर्दिक आवरण में व्याप्त जड़–चेतन के तत्व–दर्शन से है। अतः नैतिक पर्यावरण का सुस्पष्ट बोध नैतिक प्रत्ययों एवं सिद्धन्तों का पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता के निर्धारण से हो सकता है। निश्चित रूप से इस दृष्टिकोण से विवेचित करने में काण्ट के नीति दर्शन में पर्यावरणपरक नीति–निर्देशक तत्वों का स्पष्ट बोध नहीं है परन्तु समकालीन पर्यावरणपरक ukfr &n"kZ d sfl) kUr kad sfoospu l sLi 'V l d s fey r sgSd **काण्ट** ने पर्यावरणपरक चिंतन के आधार प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से तैयार कर दिये थे। काण्ट के पांच निरपेक्ष आदेश **स्किलोमोवस्की** के पर्यावरणीय नीति निर्देशक तत्व के मूल आधार बनते हैं जो व्यक्तिके आन्तरिक मूल्य का संप्रत्यय प्रस्तुत कर, प्राकषतिक सत्ताओं के आन्तरिक मूल्य स्वीकार करने की पहल कर देता है। परम्परागत एवं आधुनिक पाश्चात्य दर्शन परम्परा में नैतिक पर्यावरण एवं पर्यावरणपरक नीति–नियमों पर गहन विचार उपलब्ध नहीं है। जगत–विचार एवं सृष्टि–विवेचन के दृष्टिकोण से यत्र–तत्र पर्यावरणपरक घटकों एवं पारिथितकी संतुलन की चर्चा अवश्य मिल जाती है परन्तु सुव्यवस्थित चिंतन का अभाव है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पर्यावरण प्रदूषण एवं पारिथिकी असंतुलनने मानव–चिंतन को आन्दोलित कर दिया। 1960 में प्रकाशित **राछेल कॉर्सन** की **'साइलेंट स्प्रिंग'** ने पर्यावरण संकट से जूझने के लिए जनान्दोलन तो किया परन्तु आधार में दार्शनिक एवं नैतिक पृष्ठभूमि न होने के कारण आन्दोलन मात्र रह गया । यह भौतिक पर्यावरण के घटकों के संरक्षण मात्र एवं संवर्द्धन, लुप्त होती प्रजातियों, पशु–पक्षियों एवं पौधों के संरक्षण मात्र पर केन्द्रित हो गया क्योंकि इस पूरे आन्दोलन की वैचरिक कमी यह रही कि इसमें प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय घटकों को आन्तरिक मूल्य स्वीकार न करके यांत्रिक मूल्यों को स्वीकार किया गया था। पर्यावरणपरक समकालीन पाश्चात्य चिंतन की मुख्यतः तीन पूर्व मान्यताएं हैं– **प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर रहना, प्रकृति के आन्तरिक मूल्य को पहचानना एवं मानव केन्द्रित**

जगत–विचार को नियंत्रित करना।

पर्यावरण नीति–दर्शन विकसित करने की पहली पूर्व मान्यता है, सभी संस्कृतयों के प्रगतिशील लोगों ने यह अनुभव किया कि मुनष्य और प्रकृति के बीच विरोध और संघर्ष का सम्बन्ध है। मानव को प्रकृति से पृथक कर उसे प्रकृति का स्वामी बना दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि ''मनुष्य का प्राकृतिक शक्तियों पर स्वामित्व जैसे–जैसे बढ़, वह अपने को व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में शक्तिहीन अनुभव करने लगा। प्रकृति का स्वामी बनने की प्रक्रिया में वह अपने हाथ से बनायी हुई मशीनों का दास बन गया। परन्तु बौद्धिक एवं सर्वागीण दृष्टिकोण वाले विचारकों ने मानव एवं प्रकृति को एक सृष्टि का समान तत्व स्वीकार किया। पर्यावरण नैतिक चिंतन के दृष्टिकोण से इस बात पर जोर दिया गया है कि मानव स्वयं प्रकृति का एक अंश है एवं उसे प्रकृति पर अधिपत्य बनाने के बजाय सभी प्राकृतिक सत्ताओं के साथ सामंजस्य में रहना चाहिए। पर्यावरणपरक नैतिक सिद्धान्तों की व्याख्या हेतु परिस्थिकीय जगत–विचार की एक सबसे बड़ी चुनौती थी किस प्रकार प्रकृति एवं मानव सम्बन्धों में मानव की श्रेष्ठता मूल्यांकन किया जाये। इसका सीधा आशय मानव द्वारा उपभोग की गई प्राकृतिक सुविधाओं एवं स्वयं उसकी प्रतिष्ठा पर प्रश्न चिन्ह उठाना होगा। कुछ पर्यावरणविदों ने यह स्वीकार किया कि सम्पूर्ण सृष्टि में मानव केन्द्र में है एवं प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय घटकों से सामंजस्य स्थापित करना उसका दायित्व है। परन्तु मानव द्धारा अपनी श्रेष्ठता के दुराग्रह को नियंत्रित करना होगा। जैसा कि **विलियम ग्रे** लिखते हैं– ''मानव केन्द्रित विश्व दृष्टि को समाप्त करना मेरा उद्देश्य बिल्कुल नहीं, अपितु संयमित रूप में मै इसका अनुमोदन करता हूँ। मेरा दावा है कि यदि हम अपनी सीमाओं से आगे बढ़कर मानव को श्रेष्ठ मानेंगे एंव नैतिक परिदृश्य को विस्तृत हौर सम्पन्न नहीं बनायेंगे तो हमारा अस्तित्व ही निरर्थक हो जाए का''। वह पुनः लिखते हैं कि–''एक सम्पन्न एवं प्रबुद्ध मानव–केन्द्रित विचार तो अमानवीय सत्ताओं के लिए कृतज्ञता एवं लगाव का भाव रखता है''। इसलिए मूल रूप से मानव–केन्द्रित जगत–विचार के दुराग्रहों को समाप्त करने की आवश्यकता है न कि इस जगत–विचार को ही।

पर्यावरण–परक नीतिशास्त्र के सन्दर्भ में प्राकृतिक घटकों के अस्तित्वगत एवं उपयोगितागत दोनों दृष्टिकोणों से आन्तरिक मूल्य को स्वीकार करना होगा। जैसा कि **मार्क रॅलैंड** लिखते हैं– ''ऐसा प्रतीत होता है कि पर्यावरणपरक दृष्टिकोण से प्रकृति की उपयोगिता एवं वस्तुनिष्ठता दोनों ही पक्षो से आन्तरिक मूल्य को स्वीकार करना होगा। अभी तक प्रकृति के घटकों का मूल्य उपयोगितावादी दृष्टिकोण से स्वीकार किया जाता रहा है किन्तु यह दृष्टि यदि आर्थिक पक्ष से हटाकर उनके अस्तित्वगत मूल्य की ओर ले जाया जाये तो प्रकृति का यह स्वतः ही मूल्य होगा। पर्यावरणपरक नीतिशास्त्र की तीनों पूर्व मान्यताएं पृथक एवं भिन्न नहीं है बल्कि तीनों एक दूसरे से सम्बन्धित एवं आश्रित है क्योंकि ''यदि कोई व्यक्ति पर्यावरणपरक घटकों के आन्तरिक मूल्यों को स्वीकार कर लेगा तो मानव–केन्द्रित जगत–विचार में मानव की श्रेष्ठता का दुराग्रह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा एवं परिणामतः प्रकृति एवं मानव के बीच एक सामंजस्य स्थापित हो जाएगा। इन तीन मान्यताओं के आधार पर पर्यावरणपरक नीतिशास्त्रों ने व्यक्ति विशेष की प्रवृत्ति

परिशोधन के लिये तीन विषय निम्न शर्तों का उल्लेख किया है। ये तीन शर्ते हैं – **गहन पर्यावणीय एवं परिस्थितिकीय दृष्टिकोण रखना, अपने कर्तव्यों, व्यवहारों एवं उसके प्रभाव के संदर्भ में गहन प्रश्नात्मक दृष्टिकोण रखना एवं पर्यावरण व प्रकृति के घटकों के पक्ष मे मानवीय व्यवहार सुधारने एवं बदलने के लिये गंभीर एवं गहन निष्ठा का होना।** तीन पूर्व मान्यताओं की तरह उपरोक्त तीनों विषयनिष्ठ शर्तें भी एक–दूसरे पर आश्रित हैं। किसी भी सिद्धान्त या कर्म में गहन निष्ठा का आधार उसकी महत्ता की अनुभूति एवं उसके बारे में संशय रहित ज्ञान ही होता है, अतः उपरोक्त तीनों शर्तें मानवीय प्रवृत्ति के पर्यावरणपरक दृष्टिकोण विकसित करने के लिये तीन आयाम के रूप में देखा जा सकता है। तीन पूर्व मान्यताओं एवं तीन विषयनिष्ठ शार्तों के आधार पर ही पर्यावरणपरक नैतिक दृष्टि विकसित करने के लिए आठ सूत्रीय सिद्धान्त भी प्रस्तुत किये गये हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. सभी जीवन का आन्तरिक मूल्य है। यह आन्तरिक मूल्य मानव के लिये उपयोगी होने के मूल्य से पृथक होता है।
2. जैविक समृद्धि एवं विविधता जीवन के कल्यांण में सहयेाग देती है, इसलिए इनका मूल्य है।
3. मनुष्य को ऐसा कोई अधिकार नहीं है कि वह अपनी मूल आवश्यकताओं के अतिरिक्त जैविक समृद्धि एवं विविधता को कोई हानि पहुॅचाये।
4. पूरे विश्व में प्रकृति के प्रति मानव का व्यवहार तेजी से खराब होता जा रहा है।
5. मुनष्य की जीवन पद्धति एवं जनसंख्या वृद्धि इस बढ़ते खराब प्रभाव के कारण मूल कारण में है।
6. संस्कृतियों के साथ जीवन की विविधता के खराब प्रभाव को कम करके ही विकसित किया जा सकता है।
7. इसलिए मूलभूत वैचारिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं तकनीकीय अध्ययन को पर्यावरण एवं प्रकृति के पक्ष में बदलना चाहिए।
8. जो लोग भी ऊपर के सिद्धान्तों को समझते हैं उनका यह नैतिक दायित्व बन जाता है कि वे आवश्यक बदलाव को अपने व्यवहार में लायें एवं इसे वे शान्तिपूर्ण एवं प्रजातांत्रिक ढंग से करें। उपरोक्त विवेचन से इतना स्पष्ट हो जात है कि पाश्चात्य चिंतन परम्परा में प्लेटो से लेकर ह्यूम तक तत्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय एवं नीतिमीमांसीय विवेचन पूरी तरह से व्यक्ति केन्द्रित रहे हैं एवं सृष्टि विचार में प्रकृति एवं पर्यावरण के घटकों का उदाहरण के लिये प्रयोग तो किया परन्तु उनके आन्तरिक मूल्य को स्वीकार करते हुए उनके पक्ष में कोई दर्शन दृष्टि नहीं दे सके। जहॉ तक काण्ट के दार्शनिक विवेचन का प्रश्न है वह संश्लेष्णात्मक एवं समीक्षात्मक दृष्टिकोण रखने के कारण मानव व्यवहार के मूल समस्या तक पहुॅच तो गये परन्तु उसके चिंतन की यह उपलब्धि भी मानवीय अस्तित्व से परे एवं सृष्टि का नियम अज्ञेय बना रहे।

पाश्चात्य पर्यावरणीय नीतिशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास के क्रम में नैतिक पर्यावरण सम्बन्धी मान्यता का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य नीतिकार प्रकृति पर अधिकार की मनोवृत्ति को त्याग कर सामंजस्य स्थापित करने के महत्व को स्वीकार कर चुके है। किन्तु सामंजस्य स्थापित करने के लिए पूर्ववत् मात्र बौद्धिक आश्रय लेने की मनोवर्षत्ति को नहीं त्याग पा रहे हैं। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए भावनात्मक एवं बौद्धिक दृष्टिकोण का आश्रय लिया था। वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों के साथ माता, पिता, पुत्र, मित्र जैसे पारिवारिक सम्बन्धों की स्थापना पर बल दिया था। उन्होंने प्रकृति के साथ त्रिआयामी आर्थात भावनात्मक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया। वैदिक ऋषियों ने मानवीय जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों को इस प्रकार के आचार–निर्देश से प्रभावित किया कि मानव का सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कर्षतित्व स्वयंमेव नैतिक पर्यावरणको परिलक्षित करने लगता है। प्रकृति के साथ उपयोगितावादी सामंजस्य भारतीय नीतिकारों की दृष्टि में गौण है, भले ही प्रकृति का श्रेष्ठ अनुदान नैतिक आचार–विचार के प्रभाव से स्वतः ही स्फूर्त होने लगता है। भारतीय नीतिकार प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने के लिये भावनात्मक सम्बन्ध पर विशेष ध्यान देते है। उदाहरण के लिये, प्रातःकाल निद्रा से जागने पर पृथ्वी माता से पाद स्पर्श होने पर क्षमा–याचना करते हुए नीतिकार कहता है कि–''हे देवि ! समुद्र तुम्हारी मेखला (कटिबंध) है और पर्वत वक्ष है, हे विष्णु पत्नी! तुम्हें नमस्कार है। मैने जो तुम्हें चरणों से स्पर्श किया है, मेरे इस अपराध को क्षमा करो। इस प्रकार प्रकृति के प्रति भावनात्मक सम्मान प्रकट करने के उपरान्त दिवस पर्यन्त जो भी नित्य प्रति की क्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं उससे वैदिक ऋषियों के प्रकृति–पर्यावरण के प्रति उदात्तभावनात्मक सम्बन्धों का परिचय मिलता है। सूर्योदय के साथ ही सूर्योपासना सम्पन्न की जाती है। स्नान मंत्र में अधिकांश नदियों का स्तवन किया जाता है। तुलसी, पीपल आदि वृक्षों की नित्य उपासना की जाती है। इन धार्मिक क्रियाओं को उपयोगितावादी कर्म की संज्ञा न देकर धर्मिक कर्म की संज्ञा दी गयी है ताकि मनुष्य को अपने आचार–व्यवहार के साथ धर्म और नीति तत्व को बोध होता रहे। पाश्चात्य नीतिशास्त्र इन भावनात्मक सम्बन्धों की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं करता है अथवा उपेक्षा करता है। वह नीतिशास्त्र के अन्तर्गत पर्यावरणपरक बौद्धिक चिंतन को स्थापित करना चाहता है जबकि भारतीय नीतिदर्शन में पर्यावरणीय घटकों से प्रगाढ़ता, आत्मीयता स्थापित करके अनके नैतिक गुणों को ग्रहण करता है। पर्यावरणी संदर्भ में मानव केन्द्रित दुराग्रह को केवल भौतिक धरातल पर नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। भारतीय दार्शनिक पर्यावरणीय नीतिशास्त्र के मर्मज्ञ थे। उन्होंने दैनिक जीवन पद्धति के अंगों से पर्यावरण चिंतन को संयोजित कर दिया था। वे मानव को कदम–कदम पर यह अनुभूति देना चाहते थे कि मानवीय व्यवहार को स्वःकेन्द्रित नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिये भोजन मंत्र द्वारा जहां भारतीय नीतिकार अन्न देवाता के साथ भावनात्मक सामंजस्य स्थापित करने के लिए निर्देशित करते हैं वहीं पके हुए अन्न की अंजली को अग्निदेव में अर्पित करते है और प्रस्तुत भोजन का प्रथम ग्रास कीट योनि के जीवों को अर्पित करके अन्य जीवों के प्रति प्रथमतः ध्यान केन्द्रित करने हुए उनके उत्थान के लिए नित्य

अभ्यास से अन्य जीवों के प्रति ध्यान केन्द्रित करने के संस्कार दृढतापूर्वक स्थापित हो जाते हैं।

पाश्चात्य पर्यावरणीय नीतिशास्त्र की तीसरी मान्यता के अनुसार मानव के अतिरिक्त अन्य सत्ताओं के आन्तरिक मूल्यों की सत्ता है किन्तु आन्तरिक मूल्यों की आवधारणा का विकास बौद्धिक चिंतन के शुष्क धरातल पर संभव नहीं है। आन्तरिक मूल्यों की अवधारणा का विकास धार्मिक भावना के उर्वर धरातल पर ही संभव है। पाश्चात्य पर्यावरणीय नीतिशास्त्रीयों ने प्रकृति के अन्य घटकों में आन्तरिक मूल्य की जो अवधारणा प्रस्तुत की है वह गत सदी के वनस्पति विज्ञान के अविष्कारों से प्रेरित होकर किया। वृहदारण्यक उपरिषद के एक दृष्टांत में महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं, ''मनुष्य वनस्पति–वृक्ष के तुल्य है अर्थात मनुष्य और वनस्पति के गुण–धर्म समान है। वृक्ष के पत्ते मनुष्य के रोम के समान है, वृक्ष की छाल मनुष्य के त्वचा के समान है। वृक्ष का रस मनुष्य के रक्त के समान है। आघात लगने पर वृक्ष से भी उसी प्रकार रक्त निकलता है जिस प्रकार मनुष्य के शरीर से रक्त बहता है। प्राचीन भारतीय दार्शनिक प्रकृति के कण–कण को ईश्वरीय अंश से व्याप्त मानते हैं। वे पिण्ड में ब्रह्माण्ड का दर्शन करते है। उनके लिए प्रकृति पर्यावरण के प्रति सम्मान, ईश्वर के प्रति सम्मान का बोध कराता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन नैतिक पर्यावरण को भावनात्मक सम्बन्धों से उर्वर बनाता है, बौद्धिक सम्बन्धें से उसकी रक्षा करता है और आध्यात्मिक सम्बन्धों से उसे अनुप्राणित करता है। पाश्चात्य चिंतन पर्यावरणपरक आचार–व्यवहार को मानव पर बौद्धिक तर्कणा के आधार पर आरोपित करना चाहता है। इनके प्रतिपादन के लिए भावनिष्ठा का आश्रय नहीं लिया गया है। बिना भावनिष्ठा के किसी भी सत्ता से स्वप्रेरित व्यवहार का सम्पादन नहीं किया जा सकता है। बौद्धिक सामर्थ्य से भौतिक क्रान्ति सम्पन्न हो सकती है, नैतिक क्रान्ति नहीं। भारतीय दर्शन के अनुसार भारतीय चिंतन में अणु–परमाणु भी ब्रह्माण्डीय सत्त का सजीव प्रतिनिधित्व करता है। कण–कण में एक ही ब्रह्म के चेतन अंश की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है। ''सत्य, ऋत, उग्र, दीक्षा, तपस्या, ब्रह्म और यज्ञ पृथ्वी को धारण करते हैं और ये सात तत्व पृथ्वी के सभी भूतों, प्राणियों की समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है। ये नैतिक तत्व भारतीय नीतिशास्त्र के पर्यावरणपरक चिंतन के साक्षात मौलिक तत्व हैं। विगत तीस–चालीस वर्षों से पर्यावरण की समस्या पर कई अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन सम्पन्न हुए हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सम्मेलन 'रीयो अर्थ समिट' (1992) के नाम से जाना जाता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में पर्यावरण चिंतन इतना सशक्त है कि वह किसी भी युग में पर्यावरणपरक चिंतन के द्वारा नैतिक पर्यावरण के सृजन, मुख्य मार्ग–निर्देशक की भूमिका में स्वतः ही आ जाता है।

इसका स्पष्ट प्रमाण इस तथ्य से प्राप्त होता है कि पर्यावरणीय समस्याओं एवं परिस्थितिकीय असंतुलन की समस्या पर सर्वप्रथम जब रियो सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण एवं प्राकषतिक संतुलन के लिए एजेण्डा तैयार किया गया तो उस एजेण्डे में मुख्य प्रस्तावित बिन्दु ऋग्वेद में वर्णित पर्यावरण–चिंतन पर ही आधारित हैं–ऐसा प्रतीत होता है। रियो सम्मेलन का चौथा सिद्धान्त कहता है कि 'पर्यावरण संरक्षण से समेकित विकास निर्माण करेगा। विभिन्न वैदिक ऋचाओं में मानव को दिर्नेश दिया गया है कि जल, वनस्पति और पर्यावरण को हानि नहीं

पहुचाएं–'पृथ्वीं मा हिंसेः, अन्तरिक्षम मा हिन्सैद्ध 'मानो मनसा धीरहिंसैद्ध (यजुर्वेद)। ऋग्वेद की एक प्रार्थना में कहा गया है कि 'हम प्रकषति के महान अनुदानों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं, उन सबाको जो वृद्ध हैं और युवा हैं, हम अपनी बात को अधिकारपूर्वक कह सकें, सश्वस्वी दैविक शक्तियों से हम उनमें से किसी की भी उपेक्षा नहीं करें। सातवां रियो प्रस्ताव निर्देशित करता है कि 'पृथ्वी की पारिस्थितकी को संरक्षित किया जाए, सुरक्षित किया जाए और उसका भंडारण किया जाए। ऋग्वेद में कहा गया है कि–वह वन है, जो वृक्ष है, जिससे कि देवताओं ने पष्थ्वी और स्वर्ग को बनाया है, जो सदैव स्थिर और स्पष्ट नहीं होने वाले हैं, जो देवताओं को सुरक्षा देते हैं, जिनकी (देवों की) मनुष्य बहुत दिनों और प्रातः सूर्योदय के समय प्रार्थना करते हैं । पृथ्वी का आदर माता के रूप में किया जाता था। अथर्ववेद के अनुसार कहा गया है कि, 'भूमि माता पुत्रोहम पृथ्व्याः' – पृथ्वी का आदर एवं सुरक्षा माता के रूप मे समझकर किया जाना चाहिए। पारिस्थिकी संतुलन का मौलिक चिंतन भी समझाा गया था, प्रकृति इच्छा प्रकट करके मांग करती है– (तू) मुझे दे। (मैं) तुझे दुंगी।' देही मे, ददामि ते, (यजर्वेद)। हम विश्व स्तर पर इसका परिणाम देखते हैं जब हम इसके नियम का पालन नही करते हैं। हम प्रकृति का पोषण किये बिना इसका दोहन नहीं कर सकते हैं। हमारे प्राचीन मंत्रों से ज्ञात होता है कि ऐसा करने पर हम प्रकृति के नाजुक संतुलन को हानि पहुॅचाएंगे। कई वैदिक मंत्र प्रकृति के क्रिया व्यवहार के हर पहलू से संतुलन बनाए रखने की प्रार्थना करते हैं जैसा कि ऋग्वेद के मंत्र में कहा गया है कि –''मैं स्थापित होऊॅ । विशाल एवं सुन्दर दिवस और रात्रि में, स्वर्ग और पृथ्वी में, मित्र ओर अर्थमा सहित वरूण, इन्द्र, मरूत, पर्वत, जल, अदिति, जल और सभी देवों में। रीयो सम्मेलन का 25वां सिद्धान्त कहता है कि 'शांति, विकास और पर्यावरण संरक्षण अन्योन्याश्रित है तथा अभिभाज्य हैं। प्राचीन भारत इससे अवगत था कि पर्यावरण अच्छे अथवा बुरे कर्म पर निर्भर करता है, व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रकार से। 1997 मे क्योटो प्रोटोकाल सन्धि हुई जिसमे ग्लोबन वार्मिग द्धारा हो रहे जलवायु परिर्वतन को रोकने के लिए सन्धि में सम्मिलित देशों को ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए सम्मिलित देशों को प्रतिबद्ध किया गया, इसका उद्देश्य मानवीय मूल्यों तथा पर्यावरण का संरक्षण था। संक्षेप मे यह स्पष्ट है कि विश्व पर्यावरण दिवस की स्थापना 1972 में मानव वातावरण के विश्व सम्मेलन के वाद की गई, प्रतिवर्ष गोष्ठी तथा योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है। 2020 का विषय **जैव विविधता** का संरक्षण है जिसका जीवन सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान है, मानव स्वास्थ्य जैवविविधता तथा परिस्थितिकी परिवर्तन के कारण परिवर्तित होता है, भारत मे मानव समाज सांस्कषतिक पहचान, बौद्धिक सम्पत्ति तथा रचनात्मकता के लिए पहचाना जाता है किन्तु आज भारत प्राकृतिक सम्पदा की धरोहर को संरक्षित रखने में असफल रहा है। विश्व का कार्बन उत्सर्जित करने वाला भारत चौथा देश है, 2 अक्टूबर 2016 को गांधी जयंती के दिन हमने पेरिस समझौते को स्वीकार किया, आई. पी. सी. सी. की रिपोर्ट के अनुसार हमे ताप क्रम को 1.5 डिग्री के अन्तर्गत ही रखना है, 2030 तक 40 फीसदी ऊर्जा संसाधन हरित तथा स्वच्छ ऊर्जा से पूरा करना होगा। पर्यावरण संरक्षण को राष्ट्रीय मिशन का अंग मानते हुए सौर्य ऊर्जा, ऊर्जा क्षमता संस्टेनेवल हैविटैंट, जल संरक्षण, हिमालय पर्यावरण प्रबन्धन, हरित भारत तथा संस्टेवेल खेती के साथ–साथ कोविड–19 के बाद स्वास्थ्य

सुविधाएं स्वास्थ्य संचार तटीय क्षेत्र तथा अवशिष्ट ऊर्जा को बढ़ावा देना होगा। नीति निर्धारण तथा सामुदायिक संस्थाओं की भागीदारी के साथ–साथ खाद् सुरक्षा, जल एवं जलवायु सुरक्षा ही मानव जाति को सम्वर्धित करेंगे, साथ ही बौद्धिक व नैतिक मूल्यों के आधार पर जो कि भारतीय संस्कृति व सम्पदा की धरोहर हैं जागरूकता तथा सहभागिता ही पर्यावरण संरक्षण में मुख्य योगदान देगी। वेद ज्ञान के विशाल भंडार हैं, सृष्टि सृजन की प्रक्रिया के आधार पर उन्होंने प्रकृति के तत्वों की वैज्ञानिक व्याख्या की थी, जबकि वैज्ञानिक जांच–परीक्षण के वर्तमान यंत्र साधन उस समय उपलब्ध नहीं थे। यह दुर्भाग्य की बात है कि हम उनके द्वारा प्रस्तुत सुनहरे सिद्धान्तों को भुला चुके हैं और स्वयं विनाश की ओर अग्रसित हो रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा0 राधा कृष्णन–*भारतीय दर्शन*
2. याकुब मसीहा – *पाश्चात्य दर्शन का समीक्षात्मक इतिहास।*
3. सी0 एल0 त्रिपाठी – *ग्रीक दर्शन*
4. शान्ति जोशी – *नीतिशास्त्र*
5. जयदेव देवांलकार– *वैदिक दर्शन*
6. *दृष्टव्य* सन्दर्भ
7. *भारतीय दर्शन में पर्यावरण* – श्री अम्बिका प्रसाद उनियाल